जनसत्ता

एकता और अनेकता

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की पहल पर कोलकाता में हुई महारैली में बाईस विपक्षी दलों के नेता जुटे। उनके अलावा शत्रुघ्न सिन्हा, यशवंत सिन्हा और हार्दिक पटेल जैसे नेता भी शामिल हुए। सभी ने मिल कर नारा दिया कि केंद्र की भाजपा सरकार को हटाना है। विपक्षी दलों की यह एकजुटता निस्संदेह भाजपा के लिए बड़ी चुनौती साबित हो सकती है। मगर इस महारैली में वर्तमान सरकार को हटाने के जो तर्क दिए गए, वे बहुत असरकारी नहीं जान पड़ते। खुद विपक्षी दल भी इस महारैली में इस बात को लेकर आश्वस्त नजर नहीं आए कि वे कितना एकजुट रह पाएंगे और एक स्थायी सरकार दे सकने की स्थिति में वे होंगे या नहीं। इसलिए अभी कहना मुश्किल है कि यह महारैली वास्तव में उस महागठबंधन का आधार बनेगी या नहीं, जिसे लेकर लंबे समय से प्रयास चल रहे हैं। चुनाव बाद की स्थितियों को देखते हुए गठबंधन अपना स्वरूप लेगा। इसीलिए भाजपा को यह कहने का मौका मिला है कि यह महारैली दरअसल विपक्षी दलों के अपने स्वार्थ से प्रेरित थी और इनकी विचारधारा में कोई आपसी तालमेल नहीं है।

हालांकि बिहार विधानसभा चुनाव के दौरान विपक्षी दलों ने महारैली करके एकजुटता दिखाई थी और भाजपा को सत्ता में आने से रोक दिया था, जबकि उस वक्त वह उफान पर थी। पर उस समय सारे दल दो दलों के गठबंधन का समर्थन करने मंच पर साथ आए थे, इस बार उन सबको चुनाव मैदान में उतरना है। माना जा रहा था कि अगर उत्तर प्रदेश में विपक्षी दलों का गठबंधन आकार लेगा, तो वह पूरे देश के स्तर पर असर डालेगा। मगर वहां सिर्फ सपा और बसपा ने हाथ मिला लिया, कांग्रेस को अकेले चुनाव लड़ना पड़ेगा। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान विधानसभा चुनावों में मिली विजय से कांग्रेस का मनोबल बढ़ा है और वह पूरे देश में अपनी ताकत झोंकने की हिम्मत जुटा पाई है, पर उसके नेतृत्व को अपनी स्वीकार्यता साबित करना अब भी बड़ी चुनौती है। फिर विधानसभा और लोकसभा के चुनावों का मिजाज बिल्कुल भिन्न होता है। लोकसभा चुनाव में वही मुद्दे काम नहीं करते, जो विधानसभा चुनावों में करते हैं। इसलिए किसी दल के विधानसभा चुनाव नतीजों के आधार पर लोकसभा में भी उसकी विजय का दावा नहीं किया जा सकता। ज्यादातर दलों की हैसियत क्षेत्रीय स्तर तक सिमटी हुई है। इसलिए वे क्षेत्रीय मुद्दों को किस प्रकार और कितना राष्ट्रीय मुद्दों में बदलने में कामयाब हो पाएंगे, यह भी एक चुनौती है।

असल चुनौती केंद्र में सरकार बनाते समय विपक्षी दलों का अपने हितों से समझौता करने की होगी। सपा और बसपा जातीय समीकरण पर चुनाव लड़ती आई हैं, इसलिए उनके अपने एजेंडे हैं। चंद्रबाबू नायडू, एमके स्टालिन, एचडी कुमारस्वामी आदि के अपने क्षेत्रीय आधार हैं और उनकी मंशा रहती है कि कैसे केंद्र के साथ तालमेल करके अपने क्षेत्र के लोगों की जरूरतों को पूरा कर सकें। इस तरह पहले कई मौकों पर इन नेताओं के बीच आपसी मतभेद उजागर होते रहे हैं। पहले गठबंधन की कुछ सरकारों के अनुभव अच्छे नहीं रहे, जिनमें ये सभी दल शामिल थे। इसलिए मतदाता के मन में स्थायी और कारगर सरकार दे पाने का भरोसा जगा पाना इन दलों के सामने बड़ी चुनौती होगी। फिर जब सभी दल चुनाव मैदान में उतरेंगे, तो वे अपने लिए उतरेंगे, इसलिए वे बेशक भाजपा को हराने का नारा दे रहे हों, पर वे उसके जनाधार में कितनी सेंध लगा पाएंगे, देखने की बात होगी।

जहरीली हवा में

दिल्ली की बिगड़ती हवा को लेकर देश की शीर्ष अदालत ने एक बार फिर चेताया है। प्रदूषण से संबंधित याचिका की सुनवाई कर रहे सुप्रीम कोर्ट के पीठ के एक न्यायाधीश ने अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए यहां तक कह दिया कि 'यह शहर अब रहने लायक नहीं रह गया है, रिटायर होने के बाद मैं यहां नहीं रहूंगा'। राजधानी सहित पूरे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में हवा सांस लेने लायक नहीं रह गई है। दिल्ली गैस चैंबर में तब्दील हो चुकी है। शीर्ष अदालत की यह चिंता बताती है कि हालात दिन-प्रतिदिन बिगड़ते जा रहे हैं, लेकिन जिन पर प्रदूषण की समस्या से निपटने की जिम्मेदारी है, वे हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। सरकार और एजेंसियों के लचर रवैए पर सर्वोच्च अदालत ऐसी तल्ख टिप्पणियां पहले भी करती रही है। दिल्ली कोई आज से नहीं, पिछले कई सालों से गैस चैंबर जैसी ही बनी हुई है और इसका औसत वायु गुणवत्ता सूचकांक हमेशा खतरनाक स्तर से कई गुना ज्यादा ही रहता है। सरकारों की लापरवाही पर शीर्ष अदालत इसी तरह नाराजगी व्यक्त करती है। लेकिन सरकारों पर इसका कोई असर नहीं पड़ता।

दिल्ली और दूसरे शहरों में प्रदूषण और यातायात जाम बड़ी समस्या बना हुआ है। ये दोनों ही समस्याएं ऐसी हैं जिनका समाधान निकालने की जिम्मेदारी स्थानीय सरकार और प्रशासन की होती है। लेकिन हकीकत यह है कि प्रदूषण से निपटने के लिए या तो कदम उठाए ही नहीं जा रहे हैं, या उठाए भी जा रहे हैं तो वे बेअसर साबित हो रहे हैं। वायु प्रदूषण से दिल्ली की हालत कितनी बिगड़ चुकी है, इसका पता रोजाना आने वाले आंकड़ों से चलता है। पिछले एक महीने में ही औसत वायु गुणवत्ता सूचकांक तीन सौ अट्ठहत्तर से ऊपर ही रहा, जो अति-गंभीर स्थिति का सूचक है। इसी वजह से पिछले महीने पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण प्राधिकरण (ईपीसीए) ने दिल्ली सहित पूरे एनसीआर में दो दिन के लिए उद्योगों को बंद रखने का कदम उठाया था। हालांकि ऐसे कदमों से कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़ा सवाल तो यह है कि दिल्ली और इससे सटे इलाकों-नोएडा, गाजियाबाद, फरीदाबाद में हजारों की तादाद में जो औद्योगिक इकाइयां चल रही हैं और सालों से जहरीला धुआं उगल रही है, उनसे निपटने का रास्ता क्या है? इसलिए अगर दो दिन या हफ्ते भर उद्योगों को बंद कर भी दिया जाए तो इससे कितना प्रदूषण कम होने वाला है!

समस्या की मूल जड़ तो यह है कि दिल्ली में प्रदूषण के जो बड़े कारणों से निपटने के लिए सरकार और संबंधित एजेंसियों के पास कोई विकल्प नजर नहीं आ रहा। जैसे दिल्ली में कूड़े के पहाड़, सड़कों पर दौड़ रहे पुराने वाहन, निर्माण गतिविधियां, छोटे उद्योग आदि। ये सारी समस्याएं अरसे से हैं और विकराल रूप धारण कर चुकी हैं। दिल्ली में लाखों की संख्या में ऐसे वाहन दौड़ रहे हैं जिनकी अवधि खत्म हो चुकी है। एनसीआर में तो बड़ी संख्या में ट्रैक्टर, जुगाड़ और पुरानी डीजल बसें बिना किसी रोक के दौड़ रही हैं। इसी तरह दिल्ली में कूड़े के बड़े-बड़े पहाड़ जलते रहते हैं और इनसे निकला जहरीला धुआं पूरी दिल्ली फैलता है। लेकिन विडंबना यह है कि शीर्ष अदालत के तमाम प्रयासों के बावजूद ये पहाड़ नहीं हटाए जा सके हैं। चौंकाने वाली बात यह है कि देश में हर साल बारह लाख से ज्यादा लोग तो सिर्फ वायु प्रदूषण से होने वाली बीमारियों से मर रहे हैं। फिर भी प्रदूषण से निपटना हमारी सरकारों की प्राथमिकता में कहीं नजर नहीं आता।

कल्पमेधा

मूर्ख का मस्तिष्क दर्शन को भूल में, विज्ञान को अंधविश्वास में और कला को पांडित्य में हजम कर लेता है।
– बनार्ड शॉ

सोना उगलता ई-कचरा

प्रमोद भार्गव

भारत में ई-कचरे के पुनर्चक्रण के संयंत्र दिल्ली, मेरठ, बंगलुरु, मुंबई, चेन्नई और फिरोजाबाद में लगे हुए हैं। लेकिन जिस अनुपात में ई-कचरा पर्यावरणीय संकट बना हुआ है, उस अनुपात में ये संयंत्र ऊंट के मुंह में जीरे के समान हैं। इसलिए ई-कचरे के पुनर्चक्रण संयंत्र लगाने की जबावदेही ई-कचरा उत्पादन कंपनियों को भी सौंपने की जरूरत है।

दुनियाभर में वस्तुओं के 'उपयोग करो और फेंको' कचरा संस्कृति के विरुद्ध शंखनाद हो गया है। दरअसल पूरी दुनिया में इलैक्ट्रॉनिक कचरा (ई-कचरा) बड़ी एवं घातक समस्या के रूप में पेश आ रहा है। पृथ्वी, जल और वायु के लिए यह कचरा प्रदूषण का बड़ा सबब बन गया है। इससे निजात के लिए यूरोपीय संघ और अमेरिका के पर्यावरण संगठनों ने इलैक्ट्रॉनिक उपकरण और उत्पाद बनाने वाली कंपनियों की मनमानी के खिलाफ मोर्चा खोल दिया है। वे 'राइट टू रिपेयर' यानी मरम्मत करने के अधिकार की मांग कर रहे हैं। कालांतर में यह मांग भारत सहित पूरी दुनिया में फैलने की उम्मीद है। भारत को तो विकसित देशों ने ई-कचरा नष्ट करने का डंपिंग ग्राउंड माना हुआ है। इस कचरे को नष्ट करने के जैविक उपाय भी तलाशे जा रहे हैं, लेकिन इसमें अभी बड़ी सफलता नहीं मिली है।

अमेरिका एवं यूरोप के कई देशों के पर्यावरण मंत्री विनिर्माण कंपनियों को इस मकसद के प्रस्ताव भेज चुके हैं कि उपकरणों के निर्माता ऐसे इलैक्ट्रॉनिक उपकरण बनाएं, जो लंबे समय तक चलें और खराब होने पर उनकी मरम्मत की जा सके। भारत में भी कई गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों ने इस आवाज में अपनी आवाज मिलाना शुरू कर दी है। दरअसल, दुनिया के विकसित देश अपना ज्यादातर कचरा भारतीय समुद्र में खराब हो चुके जहाजों में लाद कर बंदरगाहों के निकट छोड़ जाते हैं। इससे भारतीय तटवर्ती समुद्रों में कचरे का अंबार लग गया है। इस ई-कचरे में कंप्यूटर, टीवी, स्क्रीन, स्मार्टफोन, टैबलेट, फ्रिज, वॉशिंग मशीन, इंडेक्शन कुकर, एसी और बैटरियों जैसे उत्पाद और उपकरण ज्यादा होते हैं। इस अभियान के बाद अमेरिका में अठारह राज्य मरम्मत के अधिकार (राइट टू रिपेयर) का कानून बनाने पर विचार कर रहे हैं।

एक शोध के मुताबिक 2004 में घरेलू कामकाज की साढ़े तीन फीसद इलैक्ट्रॉनिक मशीनें पांच साल बाद खराब हो रही थीं। 2012 में इस खराबी का अनुपात बढ़ कर 8.3 फीसद हो गया। पुनर्चक्रण (रिसाइक्लिंग) केंद्रों पर दस फीसद से ज्यादा ऐसे उपकरण आए, जो पांच साल से पहले ही खराब हो गए। यूरोप में बिकने वाले कई लैंपों में बल्ब बदलने का विकल्प नहीं है। नतीजतन बल्ब खराब होने पर पूरा लैंप बदलना पड़ता है। कंप्यूटर, लैपटॉप, टैबलेट और मोबाइल के निरंतर नए-नए मॉडल आने और उनमें नई सुविधाएं उपलब्ध होने से भी ये उपकरण अच्छी हालत में होने के बावजूद उपयोग के लायक नहीं रह जाते। लिहाजा ई-कचरे की मात्रा लगातार बढ़ रही है। एक अनुमान के मुताबिक 2018 में दुनियाभर में पांच करोड़ टन ई-कचरा इकट्ठा हुआ। इस कचरे को एक जगह जमा किया जाए तो माउंट ऐवरेस्ट से भी ऊंचा पर्वत बन जाएगा या साढ़े चार हजार एफिल टावर बन जाएंगे।

ई-कचरा पैदा करने में भारत दुनिया का पांचवां बड़ा देश है। भारतीय शहरों में पैदा होने वाले ई-कचरे में सबसे ज्यादा कंप्यूटर और उसके सहायक यंत्र होते हैं। ऐसे कचरे में चालीस फीसद सीसा और सत्तर फीसद भारी धातुएं होती हैं। कई लोग इन्हें निकाल कर आजीविका भी चला रहे हैं। आज ई-कचरा, जिसमें बड़ी मात्रा में प्लास्टिक के उपकरण भी शामिल हैं, नष्ट करना भारत समेत दुनिया के देशों के लिए मुश्किल हो रहा है। इस ई-कचरे या ई-वेस्ट को जैविक रूप से नष्ट करने के उपाय तलाशे जा रहे हैं। इस कचरे का दूसरा सकारात्मक पहलू सोना व अन्य उपयोगी धातुएं उगलना भी है। ई-कचरे से ढाई अरब रुपए से ज्यादा का सोना हाल ही में निकाला गया है। दुनिया की सबसे बड़ी स्मार्टफोन निर्माता कंपनी ने अपने ही कबाड़ में बदले स्मार्टफोन और कंप्यूटरों से सोने का खजाना ढूंढ़ निकाला है। कंपनी ने इस बेकार हो चुके कचरे को पुनर्चक्रित करके बड़ी कमाई करने में सफलता हासिल की है। इस काम से कंपनी ने करीब दो सौ चौंसठ करोड़ रुपए सोने के रूप में तो कमाए ही, साथ ही करीब छह अरब रुपए का इस्पात, एल्युमीनियम, ग्लास और अन्य धात्विक तत्व निकालने में कामयाबी हासिल की है। अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी का ऐसा प्रयास हमारी केंद्र व राज्य सरकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनना चाहिए कि युवाओं को ई-कचरे से सोना एवं अन्य धातुएं निकालने की तकनीक सिखाएं और स्टार्टअप के तहत इस कचरे को पुनर्चक्रित करने के संयंत्र लगाने के लिए प्रोत्साहित करें। इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों के उत्पादन और उनके नष्ट होने की प्रक्रिया निरंतर चलने वाली है। अगर ऐसे संयंत्र देश के कोने-कोने में लग जाते हैं तो इनके संचालन में कठिनाई आने वाली नहीं है। अब गांव-गांव में स्मार्टफोन और कंप्यूटर उपयोग में लाए जा रहे हैं। इसलिए बेकार हो चुके उपकरणों के रूप में कच्चा माल भी स्थानीय स्तर पर ही मिल सकता है और पुनर्चक्रण के बाद जो सोना-चांदी, इस्पात, जस्ता ,तांबा, पीतल, एल्युमीनियम आदि धातुएं निकलेंगी उनके खरीददार भी स्थानीय स्तर पर ही मिल जाएंगे। इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों के विशेषज्ञों का मानना है कि औसतन एक स्मार्टफोन में तीस मिली ग्राम सोना होता है। यह फोन के सर्किट बोर्ड और अंदरूनी कलपुर्जों में होता है। ऐसे में समस्या बन रहा ई-कचरा युवाओं के लिए रोजगार के नए दरवाजे खोल सकता है। इसलिए इस कचरे को एक रोजगार उपलब्ध कराने वाले संसाधन के रूप में देखने की जरूरत है।

औसतन एक टन ई-कचरे के टुकड़े करके उसे यांत्रिक तरीके से पुनर्चक्रित किया जाए तो लगभग चालीस किलो धूल या राख जैसा पदार्थ तैयार होता है। इसमें अनेक कीमती धातुएं समाहित रहती हैं। इन धातुओं के पृथक्करण की प्रक्रिया में हाथों से छंटाई, चुंबक के प्रयोग से विलगीकरण, विद्युत-विच्छेदन, सेंट्रीफ्यूजन और उलट ऑस्मोसिस जैसी तकनीकें शामिल हैं। लेकिन ये तरीके मानव शरीर और पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले हैं, इसलिए इसके लिए बायो-हाइड्रो मैटेलर्जिकल तकनीक कहीं ज्यादा बेहतर है। इसके लिए ई-कचरे को बारीक पीस कर उसे जीवाणुओं के साथ रखा जाता है। बैक्टीरिया में मौजूद एंजाइम कचरे में उपस्थित धातुओं को ऐसे यौगिकों में बदल देते हैं कि उनमें गातिशीलता पैदा हो जाती है। बायो-लीचिंग नाम की इस विधि में जीवाणु कुछ विशेष धातुओं को अलग करने में मदद करते हैं।

यदि ई-कचरे को पेड़ की छाल की तरह छीलन में बदल कर पांच-दस ग्राम प्रति लीटर की सांद्रता में घोल कर बैक्टीरिया थोयोबेसिलस, थायोऑक्सीडेंस और थायोबेसिलस फेरोऑक्सीडेंस के साथ रखा जाए तो कुछ तांबा, जस्ता, निकल और एल्युमीनियम नब्बे फीसद से अधिक निकाले जा सकते हैं। इसी प्रकार से एस्पराजिलस नाइजर और पेनिसिलियम सिंप्लिसिसिमम नामक फफूंदों की मदद से पैंसठ फीसद तक तांबा और टिन अलग किए जा सकते हैं। इसके अलावा कचरे के छीलन की सांद्रता सौ ग्राम प्रति लीटर रखी जाए तो एल्युमीनियम, निकल, सीसा और जस्ते में से भी पनच्यानवे फीसद धातु को अलग किया जा सकता है। ये सभी धातुएं ऐसी हैं, जिन्हें उद्योग आसानी से खरीद सकते हैं।

पुनर्चक्रित प्रक्रिया के लिए भौतिक-रासायनिक और ऊष्मा आधारित तकनीकें भी उपलब्ध हैं, किंतु जैविक तकनीक की तुलना में इनकी सफलता कम आंकी गई है। हालांकि भारत में ई-कचरे के पुनर्चक्रण के संयंत्र दिल्ली, मेरठ, बंगलुरु, मुंबई, चेन्नई और फिरोजाबाद में लगे हुए हैं। लेकिन जिस अनुपात में ई-कचरा पर्यावरणीय संकट बना हुआ है, उस अनुपात में ये संयंत्र ऊंट के मुंह में जीरे के समान हैं। इसलिए ई-कचरे के पुनर्चक्रण संयंत्र लगाने की जबावदेही ई-कचरा उत्पादन कंपनियों को भी सौंपने की जरूरत है। यदि पुनर्चक्रण के ये संयंत्र बड़ी संख्या में लगाए जाते हैं तो ई-कचरे का निपटारा तो होगा ही, साथ ही पृथ्वी, जल और वायु प्रदूषण मुक्त रहेंगे।

स्वाद की सेंध

अरुणेंद्र नाथ वर्मा

ईस्ट इंडिया कंपनी की लाल वर्दी पहने सिपाहियों ने लाल किले पर कब्जा जमा कर चरमराती मुगलिया सल्तनत का तख्तो-ताज तो छीन लिया, लेकिन बिना मिर्च-मसाले का फीका रोस्टबीफ और बेस्वाद लगती यॉर्कशायर पुडिंग दिल्ली वालों की जुबान पर नहीं चढ़ सके। बादशाह की हैसियत कैदी की हो गई, लेकिन सोने-चांदी के वर्क ओढ़े, गर्म मसाले, जाफरान और केवडा की खुशबू से गमकते मोगलाई व्यंजन की हैसियत में कोई फर्क नहीं पड़ा। यहां इसे क्विजीन कहने का ही मन कर रहा है! अवध से आए एक प्रतिद्वंद्वी ने जरूर कोशिश की उसका रुतबा कम करने की, लेकिन नवाब वाजिद अली शाह के दरबार से अशर्फी की बघार में संवर कर आने के बावजूद अवधी क्विजीन दिल्ली वालों के दिल से मोगलाई क्विजीन को रुखसत नहीं कर पाई। फिर जैसे तैमूरलंग और नादिर शाह केंद्रीय एशिया से आकर धावे मारते आए थे, वैसे ही दिल्ली के बावर्चीखानों पर पश्चिमोत्तर में हिमालय के दर्रों से उतर कर तंदूरी क्विजीन धावा मारने लगी।

हालांकि अपरिचित वह तब भी नहीं थी। अंग्रेज देश के टुकड़े करके चले गए तो स्वजन-सी लगती मोगलाई क्विजीन के संग रहने के लिए पेशावर के मोतीमहल रेस्टारेंट को मय तंदूरी चिकेन को लाखों अन्य पंजाबी विस्थापितों के साथ भारत आना पड़ा। दरियागंज के मोतीमहल रेस्टारेंट से पंडित जवाहर लाल की खाने की मेज पर पहुंच कर तंदूरी चिकेन मशहूर हो गया। इतना कि 1962 में रोम से मुंबई की उड़ान में जैकेलीन केनेडी भी उसकी फरमाइश कर बैठीं। तंदूरी चिकेन की बरात में शहबाला बन कर छोटा भाई चिकेन टिक्का मसाला भी आया।

दुनिया मेरे आगे

उधर शाकाहारियों को तृप्ति देने वाले पंजाबी व्यंजन भी दिल्ली वालों की जुबान पर चढ़ गए। चिकेन से सस्ता पड़ने के बूते पर ही नहीं, बल्कि अपने चटपटे स्वाद के दम पर छोला-भटूरा, चना और अमृतसरी कुलचा भी दिल्ली में आकर बस गए। मगर पांच सितारा होटलों को आबाद करने वाले अभिजात वर्ग ने इन्हें तंदूरी चिकेन और टिक्का मसाला जैसी तरजीह नहीं दी। वजह शायद यह थी कि तंदूरी चिकेन और टिक्का तो नफासत के साथ पांच सितारा होटलों में सिंगल माल्ट व्हिस्की के साथ चलते थे, लेकिन छोले-भटूरे के साथ सिंगल माल्ट का क्या जोड़! उधर तंदूरी चिकेन सिंगल माल्ट के साथ ही नहीं, ढाबे के बाहर बिछे 'मंझे' पर संतरे, आसा और देसी के साथ भी संगत करने लगा।

आगे चल कर दिल्ली को तिब्बती आगंतुकों ने मोमो के मोहजाल में भी बांधा। मोमो बड़ा चतुर निकला। बहुरूपिए की मानिंद सामिष और निरामिष दोनों शक्लें बना लेने में माहिर। फिर मोमो के अंदर जिसे मौका मिला घुस लिया- चिकेन हो या नूडल या घासपात। बात तिब्बत तक आ पहुंची तो चीन कौन दूर था! फिर तो नूडल और चाऊमिन भी मैक्महोन रेखा लांघ कर आए और टिक गए। बहुरंगी चाइनीज क्विजीन तो बड़े होटलों तक सीमित रही, लेकिन नूडल और चाऊमीन रेस्तराओं से लेकर सर्वहारा वर्ग की पसंद बन कर गलियों और साप्ताहिक हाटों तक जा पहुंचे। इनके बीच मैगी नूडल्स का जिक्र क्या करें। बात दिल्ली की गलियों और सड़कों के स्ट्रीट फूड की है, मैगी नूडल का क्या, वह तो घर-घर में घुसी हुई है।

बाहर से आकर दिल्ली की दावतों में शामिल होने के लिए, विशेषकर जहां शाकाहारी भोजन पर जोर हो, राजस्थान के दाल-बाटी चूरमा ने भी कम मेहनत नहीं की। शादियों में खाने का कॉन्ट्रैक्ट लेने वाले खूब जानते हैं कि व्यंजन भले चौंसठ तरह के हों, आदमी पेट भर ही तो खाएगा। कई लोग तो अक्सर चाट, पापड़ी, आलू टिक्की, दही भल्ले से ही पेट भर लेते हैं। फिर दाल-बाटी-चूरमा जैसा सस्ता और टिकाऊ माल मेनू से बाहर क्यों रहे। हालांकि सादगी की चादर ओढ़ कर आई दाल-बाटी देशी घी में नहा कर और चूरमा इलायची, बादाम के साथ नक्शेबाजी करके महंगे बन जाते हैं। राजस्थानी दाल-बाटी का पंजाबी जवाब है 'मक्की दी (की) रोटी' और 'सरसों दा (का) साग'। साग में उड़ेले गए मक्खन और घी की मात्रा बता देती है कि वह महंगे होटल का है या ढाबे का। लेकिन दाल-बाटी और सरसों का साग-मक्की की रोटी, रोजमर्रा के खाने की हैसियत से ठेलों पर कम ही दिखते हैं।

हाल के वर्षों में पूरब से आकर दिल्ली की संस्कृति में जैसे छठ का पर्व जुड़ते दिखा है, वैसे ही बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के सर्वहारा वर्ग के साथ आकर पुरबिया रसोई का स्वाद दिल्ली की जुबान तक पहुंचा रही है लिट्टी-चोखे की जोड़ी। लिट्टी, भौंरी या बाटी के अंदर सतुआ या चने का आटा न हो और चोखा कहे जाने वाले आलू या बैंगन के भरते में कच्चे लहसुन और सरसों के तेल की तुर्शी न मिले तो उसे नकली समझिए। लिट्टी-चोखे की बबली-बंटी नुमा जोड़ी अभी राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के नोयडा, ग्रेटर नोयडा, गाजियाबाद और पूर्वी दिल्ली से पूरी दिल्ली की तरफ अभी सिर्फ झांकती-सी लगती है। शायद जल्दी ही यह जोड़ी दिल्ली को घेरती तंदूरी चिकेन की दीवार में सेंध लगा कर पूरी तरह घुस लेगी और दिल्ली-करनाल-अंबाला तक के मशहूर ढाबों पर कब्जा कर लेगी।

जाम की समस्या

आज कई व्यस्त व घनी आबादी वाले शहर यातायात जाम की समस्या से जूझ रहे हैं। प्रमुख सड़कों, चौराहों व रेलवे फाटकों पर सुबह-शाम जाम ही लगा रहता है। वाहन रेंग-रेंग कर चलते हैं। गाड़ियों में ईंधन बर्बाद होता रहता है। जाम के कारण आम जनजीवन ठप हो जाता है। आम लोगों को परेशानी का सामना करना पड़ रहा है, जहां एक ओर लोग अपने गंतव्य तक समय से नहीं पहुंच पा रहे हैं। वहीं, दूसरी ओर गाड़ियों से निकलने वाले धुएं के कारण हवा में लगातार जहर घुलता जा रहा है। इससे लोगों की सेहत पर बुरा असर पड़ रहा है। जाम में लोगों का समय व्यर्थ जा रहा है। जाम लगने वाली सड़कों व चौराहों पर यातायात पुलिस को अधिक ध्यान देना होगा। भीड़भाड़ वाले चौराहों पर पुलिस की मौजूदगी से ही जाम से निजात मिल सकती है। सड़क पर गाड़ियों की आवाजाही बढ़ने से हर साल लाखों लोग सड़क दुर्घटनाओं में मारे जा रहे हैं। सड़क व चौराहों को जाम से निजात दिलाने के लिए सरकारों को और हम सब को उचित कदम उठाने होंगे। सप्ताह में एक दिन निजी वाहन का उपयोग न कर सार्वजनिक परिवहन की सेवाएं लेने हेतु लोगों को प्रेरित करना होगा। सार्वजनिक परिवहन की कमी दूर करनी होगी। सरकार को नगरीय बस सेवाओं को बढ़ाना होगा। अगर हमने अपने यातायात के तरीकों में बदलाव नहीं किया तो हमें घर से कार्यस्थल व कार्यस्थल से घर जाने के लिए शहर की सड़कों पर कई-कई घंटों तक जाम हटने का इंतजार करना होगा।

•राजेंद्र कुमावत, जयपुर

बढ़ते साइबर अपराध

भारत में साइबर अपराध तेजी से बढ़ रहा है। इंटरनेट की सहायता से किसी व्यक्ति की जानकारी निकाल कर उसे ब्लैकमेल किया जाता है। केवल क्रेडिट कार्ड से जुड़ी धोखाधड़ी के मामले में 2014-15 में 13083, मामले और 2015-16 में 16468 मामले और 2016-17 में अप्रैल से सितंबर तक की तिमाही के दौरान 13653 मामले दर्ज किए थे। इसके अतिरिक्त जनवरी से जून 2017 के बीच साइबर अपराध के 27,482 मामले दर्ज किए गए थे।

रिपोर्टों के अनुसार 2016 में हर 12 मिनट में एक साइबर अपराध होता था। पर 2017 में यह हर 10 मिनट में एक होने लगा। वैसे तो सरकार इसे बड़ी समस्या समझते हुए इसकी रोकथाम के लिए साइबर अपराध सेल की स्थापना कर चुका है। सरकार तो अपने प्रयास कर रही है पर उसके लिए नागरिकों को भी जागरूक होना पड़ेगा।

•निखिल कुमार झा, दिल्ली विवि

पर्यावरण की चिंता

पर्यावरण के प्रति लोगों की उदासीनता चिंता में डालती है। आजकल सड़कों, नदियों, तालाबों, मैदानों, पार्कों आदि सार्वजनिक स्थलों पर पॉलीथिन के रैपर पड़े रहते हैं जो न तो सड़ते हैं, न ही गलते हैं, न ही नष्ट होते हैं, बल्कि उपजाऊ मिट्टी की उर्वरा शक्ति को नष्ट कर देते हैं जिससे प्रदूषण बढ़ता है। प्रदूषण की वजह से सभी लोगों को इसका बुरा असर झेलना पड़ता है। दूसरी ओर धूम्रपान करने वाले भी पर्यावरण को दूषित करने में कुछ कम योगदान नहीं निभा रहे और भावी पीढ़ियों को भी इसके जाल में फंसा रहे हैं।

आज लोग जल की महत्ता को भी नहीं समझ रहे हैं और न ही घटते भूजल के स्तर को। पर्यावरण की रक्षा के लिए लोगों को अपने निजी वाहन को कम से कम इस्तेमाल कर सार्वजनिक परिवहन का इस्तेमाल करना चाहिए ताकि प्रदूषण कम हो।

•शशांक वार्ष्णेय, दिल्ली विवि

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

जाति आधारित चुनाव

जब भी चुनाव होता है, उसमें जातिवाद का मसला हावी हो जाता है। लोग उसी उम्मीदवार को वोट देते हैं जो उनकी जाति का हो। ऐसी स्थिति देश के लिए दयनीय है, क्योंकि हम जाति पर आधारित होकर उचित उम्मीदवार को नहीं चुन सकते। हमें ऐसे व्यक्ति को वोट देना चाहिए जो सबका भला करे, बेरोजगारी दूर करे, गरीबी मिटाए। लेकिन ऐसा देखने को नहीं मिलता है। आज वोट की राजनीति में जाति अहम भूमिका निभाने लगी है। ऐसे में नतीजा यह होता है कि सत्ता गलत व्यक्ति के हाथों में आ जाती है और हम विकास के बजाय विनाश की ओर बढ़ने लगते हैं। आज शिक्षित व्यक्तियों की कमी नहीं है, इसके बावजूद जातिवाद पर लड़ते हैं, तो फिर शिक्षित होने का क्या लाभ? हम विद्यालय के दिनों से ही सीखते आए हैं कि भगवान ने केवल इंसान बनाया है और जाति इंसान ने, इसलिए हमें जाति पर विवाद नहीं करना चाहिए और ऐसे व्यक्ति को वोट दें जो हर तरह से निपुण हो। वह जिस पद पर खड़ा है उसके लिए उसमें योग्यता हो। तभी हमारा देश तरक्की करेगा।

• शैलेश कुमार, मधुपुर

देर आए, दुरुस्त आए

केंद्र सरकार द्वारा आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्ग को आरक्षण देने के फैसले को कानून विशेषज्ञों ने करोड़ों बेरोजगारों को सपने बेचने वाला बताया है। भारत में चुनावी साल में एक बार फिर आरक्षण का मुद्दा उठाया गया है। भारत में सामान्य वर्ग में भी लोग बहुत गरीब हैं और उनकी संख्या लगतार बढ़ रही है। सामान्य वर्ग के गरीबों को आरक्षण देने के लिए पहले भी आयोग बनाए गए थे, लेकिन आरक्षण की सीमा पचास फीसद होने के कारण उन्हें आरक्षण का लाभ नहीं दिया जा सका। 1991 में सामान्य वर्ग के गरीबों के लिए 10 फीसद आरक्षण की व्यवस्था की गई थी, लेकिन तब भी उसे सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था। उसके बाद सरकार ने 2004 में दुबारा आयोग बनाया, लेकिन उस आयोग के अध्यक्ष ने चार महीने बाद ही इस्तीफा दे दिया, जिस कारण आयोग भंग हो गया। इस बार सरकार ने आर्थिक आधार पर सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को दस फीसद आरक्षण देने के लिए जो संविधान 124 संशोधन पारित करवाया है, वह भले देर से उठाया गया कदम हो, लेकिन बिल्कुल दुरुस्त है।

•मनीषा, कुशीनगर